आठवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

व्याख्यातमेतद्ब्रह्माण्डसंस्थानं तव सुव्रत। ततः प्रमाणसंस्थाने सूर्यादीनां शृणुष्व मे॥१॥
योजनानां सहस्त्राणि भास्करस्य रथो नव। ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम॥२॥
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै। योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्॥३॥
त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके। संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥४॥
हयाश्च सप्तच्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु। गायत्री च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च।
अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ता छन्दांसि हरयो रवेः॥५॥
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः। पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते॥६॥
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारो रथस्य वै।
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले॥७॥
मानसोत्तरशैलस्य पूर्वतो वासवी पुरी। दक्षिणे तु यमस्यान्या प्रतीच्यां वरुणस्य च।
उत्तरेण च सोमस्य तासां नामानि मे शृणु॥८॥
वस्वौकसारा शक्रस्य याम्यां संयमनी तथा। पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी॥९॥
काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति। मैत्रेय भगवान्भानुर्ज्योतिषां चक्रसंयुतः॥१०॥
अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान्रविः। देवयानः परः पन्था योगिनां क्लेशसंक्षये॥११॥
दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः। सर्वद्वीपेषु मैत्रेय निशार्द्धस्य च सम्मुखः॥१२॥

सूर्य, नक्षत्र, राशि, कालचक्र, लोकपाल आदि का वर्णन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे सुव्रत ! मैंने आपको ब्रह्माण्ड के संस्थान का वर्णन सुनाया; अब तुम सूर्य आदि के प्रमाण तथा संस्थान का वर्णन सुनो ॥१॥ सूर्य के रथ का विस्तार नव हजार योजन है और उसके दो गुना विस्तृत उसका ईषादण्ड (जूआ आदि) है ॥२॥ उसका अक्ष (धुरा) डेढ़ करोड़ सात लाख योजन विस्तृत है। उसी में उसका चक्का लगा हुआ है ॥३॥ उसके पूर्वाह्न, पराहण तथा मध्याह्न रूप तीन नाभि हैं परिवत्सर आदि पाँच आर है, षड् ऋतुरूपी छह नेमि से युक्त अक्षयात्मक संवत्स्वरूप उस चक्र में सम्पूर्ण काल चक्र स्थित है ॥४॥ सात प्रकार के वैदिक छन्द ही उस रथ के घोड़े हैं, उनका नाम सुनो। गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पङ्क्ति ये छन्द ही सूर्य के घोड़े हैं ॥५॥ हे महामते ! सूर्य के रथ का दूसरा अक्ष (धुरा) साढे पैंतालीस हजार योजन विस्तृत है ॥६॥ दोनों अक्षों (धुरों) के प्रमाणों के सदृश ही उसके युगार्द्धों का परिमाण है। उस रथ का छोटा जुआ ध्रुव के आधार पर स्थित हैं, दूसरे धूरे का चक्का मानसोत्तर पर्वत पर स्थित है ॥७॥ मानसोत्तर पर्वत के पूर्व में इन्द्र पुरी है, दक्षिण में यम की पुरी, पश्चिम में वरुण की और उत्तर में सोम की पुरी है। उन पुरियों का नाम सुनो॥८॥ इन्द्र की पुरी का नाम वस्वौकसारा है, यम की पुरी संयमनी है, वरुण की सुखा पुरी है और सोम की विभावरी पुरी है ॥९॥ हे मैत्रेय ! दक्षिण दिशा में जाकर भगवान् भानु ज्योतिश्चक्र के साथ छोड़े गये बाण के समान तीव्र गति से चलते हैं ॥१०॥ भगवान् सूर्य ही दिन और रात्रि की व्यवस्था के कारण हैं, योगियों के क्लेश का क्षय हो जाने पर वे ही देवयान (अर्चिरादि मार्ग) नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं ॥११॥ हे मैत्रेय ! सभी द्वीपों में सूर्य मध्याह्न में

उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे। विदिशासु त्वशेषासु तथा ब्रह्मन् दिशासु च ॥१३॥
यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः। तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः॥१४॥
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः। उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः॥१५॥
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम्। विकोणौ द्वौ विकोणस्थस्त्रीन् कोणान्द्वे पुरे तथा ॥१६॥
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नात्तपान्रविः। ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति ॥१७॥
उदयास्तमनाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे दिशौ। यावत्पुरस्तात्तपति तावत्पृष्ठे च पार्श्वयोः॥१८॥
ऋतेऽमरगिरेर्मेरोरुपरि ब्रह्मणः सभाम्। ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मणः सभाम्।
ते ते निरस्तास्तद्भासा प्रतीपमुपयान्ति वै ॥१९॥
तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि। सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः॥२०॥
प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे। विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते॥२१॥
वह्नेः प्रभा तथा भानुर्दिनेष्वाविशति द्विज। अतीव वह्निसंयोगादतः सूर्यः प्रकाशते॥२२॥
तेजसी भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणी। परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥२३॥
दक्षिणोत्तरभूम्यर्द्धे समुतिष्ठति भास्करे। अहोरात्रं विशत्यम्भस्तमः प्रकाश्यशीलवत्॥२४॥
आताम्रा हि भवन्त्यापो दिवा नक्तप्रवेशनात्। दिनं विशति चैवाम्भो भास्करेऽस्तमुपेयुषि।

सर्वदा आकाश के मध्य में सामने की ओर रहते हैं ॥१२॥ इसी तरह उनका उदय तथा अस्त भी सर्वदा एक दूसरे के सामने ही होता है। हे ब्रह्मन्! सभी दिशाओं तथा विदिशाओं में जहाँ के लोगों द्वारा जहाँ पर सूर्य देखे जाते हैं, वहीं उनका उदय होता है, जहाँ पर उनका तिरोधान होता है, वही उनका अस्तमन कहलाता है ॥१३-१४॥ सर्वदा एक समान रहने वाले सूर्यदेव का न तो उदय होता है और न तो उनका अस्तमन ही होता है। उनका दर्शन होना ही उदय कहलाता है और उनका छिप जाना ही अस्त कहलाता है ॥१५॥ इन्द्र आदि की नगरियों में स्थित वे तीन नगरियों तथा दो कोणों को प्रकाशित करते हैं। ईशान आदि कोणों में स्थित भगवान् सूर्य एककोण में प्रकाशित होते हुए तीन कोणों और दो पुरियों को प्रकाशित करते हैं ॥१६॥ उदित होने के पश्चात् मध्याह्न तक सूर्य अपनी बढ़ती हुयी किरणों से तपते हैं और उसके पश्चात् वे अपनी कम होती हुयी किरणों के साथ अस्त होते हैं ॥१७॥ सूर्य के उदय होने तथा अस्त होने के द्वारा ही पूर्व और पश्चिम दिशाएँ व्यवस्थित होती हैं। वस्तुतः वे जिस तरह पूर्व में प्रकाशित होते हैं उसी तरह पश्चिम दिशा में भी प्रकाशित होते हैं तथा उत्तर एवं दक्षिण दिशाओं को भी प्रकाशित करते हैं ॥१८॥ सूर्य देवगिरि सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्माजी की सभा को छोड़कर सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं। उनकी जो-जो किरणें ब्रह्माजी की सभा में जाती हैं, वे सबके सब उस सभा के प्रकाश से निस्तेज होकर लौट जाती हैं ॥१९॥ सुमेरु पर्वत समस्त द्वीपों और वर्षों के उत्तर दिशा में है, अतएव उत्तर दिशा में सर्वदा एक ओर दिन और एक ओर रात्रि रहती है ॥२०॥ रात्रि में सूर्य के अस्त हो जाने पर सूर्य का तेज अग्नि में प्रवेश कर जाता है इसीलिए रात्रि में अग्नि दूर से ही चमकता है ॥२१॥ हे द्विज! दिन में अग्नि का तेज सूर्य में प्रविष्ट हो जाता है, इसीलिए अग्नि के तेज का संयोग पाकर दिन में सूर्य अधिक प्रकाशित होते हैं ॥२२॥ इसीलिए सूर्य और अग्नि का उष्णतामय तेज परस्पर में मिलकर दिन और रात्रि में बढ़ जाता है ॥२३॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिणी तथा उत्तरी भूम्यर्द्ध में सूर्य के उदित होते समय अन्धकारमयी रात्रि और प्रकाशमय दिन जल में प्रवेश कर जाते हैं ॥२४॥ दिन के समय रात्रि के जल में प्रवेश कर जाने के कारण ही जल कुछ ताम्रवर्ण का दिखता है, और सूर्यास्त होने पर सूर्य के

तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥२५॥
एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः। त्रिंशद्भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहूर्तिकी गतिः ॥२६॥
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष दिवाकरः। करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनी द्विज॥२७॥
अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः। ततः कुम्भं च मीनं च राशे राश्यन्तरं द्विज॥२८॥
त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम्। प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं ततः समम्॥२९॥
ततो रात्रिः क्षयं याति वर्द्धतेऽनुदिनं दिनम् ॥३०॥
ततश्च मिथुनस्यान्ते परां काष्ठामुपागतः। राशिं कर्कटकं प्राप्य कुरुते दक्षिणायनम्॥३१॥
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्त्तते। दक्षिणप्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं प्रवर्तते॥३२॥
अतिवेगितया कालं वायुवेगबलाच्चरन्। तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति॥३३॥
सूर्यो द्वादशभिः शैघ्र्यान्मुहूर्तैर्दक्षिणायने। त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्ना तु चरति द्विज।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥३४॥
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति। तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः॥३५॥
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां तु गच्छति। अष्टादशमूहूर्तं यदुत्तरायणपश्चिमम् ॥३६॥
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥३७॥
त्रयोदशार्द्धमह्ना तु ऋक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन्॥३८॥

तेज के जल में प्रविष्ट हो जाने के कारण रात्रि में जल स्वच्छ सा प्रतीत होता है ॥२५॥ इस तरह सूर्य जब पुष्कर द्वीप के मध्यभाग में जाकर पृथिवी के तीसवें भाग को पार कर लेते हैं, उस समय उनकी गति एक मुहूर्त की हो जाती है। अर्थात् उतनी दूरी पार करने में जो समय लगता है, वह एक मुहूर्त का होता है ॥२६॥ हे द्विज ! कुलाल चक्र (कुम्हार के चाक) पर घूमते हुए जीव के समान ज्योतिष् चक्र पर्यन्त स्थित यह सूर्य पृथिवी का परित्याग करते हुए दिन और रात्रि करते हैं ॥२७॥ उत्तरायण के आरम्भ में सूर्य सर्वप्रथम मकर राशि पर जाते हैं। उसके पश्चात् वे कुम्भ तथा मीन राशि पर एक राशि से दूसरी राशि पर जाते हैं ॥२८॥ इन तीन राशियों का भोग कर लेने पर सूर्य दिन और रात्रि को बराबर कर देते हैं, उस समय उनकी वैषुवती गति हो जाती है। अर्थात् वे भूमध्य रेखा पर चलते हैं ॥२९॥ उसके पश्चात् रात्रि घटने लगती है और दिन प्रतिदिन बढ़ने लगता है ॥३०॥ उसके पश्चात् मेष, वृष एवं मिथुन इन तीन राशियों को पार करके जब सूर्य देव कर्क राशि में प्रवेश करते है तो दक्षिणायन प्रारम्भ होता है॥३१॥ जिस तरह कुलाल चक्र के सिरे पर स्थित जीव अत्यन्त शीघ्रता से घूमता है उसी तरह सूर्य भी दक्षिणायन को अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक पार करते हैं ॥३२॥ वायु के वेग से अत्यन्त वेग पूर्वक चलते हुए सूर्य अपनी उत्कृष्ट भूमि को अल्प समय में पार कर लेते हैं ॥३३॥ दक्षिणायन में दिन में शीघ्रगामी होने के कारण सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रों को बारह मुहूर्त में ही पार कर लेते हैं, किन्तु रात्रि में मन्दगामी होने के कारण उतने ही नक्षत्रों को अठारह मुहूर्त में पार करते हैं ॥३४॥ जिस तरह कुलाल चक्र के बीच में स्थित जीव मन्द गति से चलता है, उसी तरह उत्तरायण के समय मन्दगति से सूर्य चलते हैं ॥३५॥ इसीलिए अल्पभूमि को भी वे देर से पार करते हैं। फलतः उत्तरायण का जो पश्चिम (अन्तिम) दिन होता है, वह अठारह मुहूर्त का होता है। उस दिन भी सूर्य मन्दगति से चलते हैं ॥३६-३७॥ अतएव उतने समय में दिन में सूर्य साढे तेरह नक्षत्रों को पार करते हैं, किन्तु रात्रि में वे ज्योतिष चक्र के साढ़े तेरह नक्षत्रों को बारह मुहूर्त में ही पारकर लेते हैं ॥३८॥ अतएव जिस तरह चक्र के बीच में

अतो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा। मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा॥३९॥
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते। ध्रुवस्तथा हि मैत्रेय तत्रैव परिवर्तते ॥४०॥
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु। दिवा नक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥४१॥
मन्दाह्नि यस्मिन्नयने शीघ्रा नक्तं तदा गतिः। शीघ्रा निशि यदा चास्य तदा मन्दा दिवा गतिः ॥४२॥
एकप्रमाणमेवैष मार्गं याति दिवाकरः। अहोरात्रेण यो भुङ्क्ते समस्ता राशयो द्विज ॥४३॥
षडेव राशीन् यो भुङ्क्ते रात्रावन्यांश्च षड्दिवा ॥४४॥
राशिप्रमाणजनिता दीर्घह्रस्वात्मता दिने। तथा निशायां राशीनां प्रमाणैर्लघुदीर्घता ॥४५॥
दिनादेर्दीर्घह्रस्वत्वं तद्भोगेनैव जायते। उत्तरे प्रक्रमे शीघ्रा निशि मन्दा गतिर्दिवा ॥४६॥
दक्षिणे त्वयने चैव विपरीता विवस्वतः ॥४७॥
उषा रात्रिः समाख्याताव्युष्टिश्चाप्युच्यते दिनम्। प्रोच्यते च तथा सन्ध्या उषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम् ॥४८॥
सन्ध्याकाले च सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुणे। मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥४९॥
प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम्। अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिने दिने ॥५०॥
ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम्। ततो द्विजोत्तमास्तोयं संक्षिपन्ति महामुने ॥५१॥
ॐकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रीभूतेन वारिणा ॥५२॥
अग्निहोत्रे हूयते या समन्त्रा प्रथमाहुतिः। सूर्यो ज्योतिः सहस्रांशुस्तया दीप्यति भास्करः ॥५३॥
ओङ्कारो भगवान्विष्णुस्त्रिधामा वचसां पतिः। तदुच्चारणतस्ते तु विनाशं यान्ति राक्षसाः ॥५४॥
वैष्णवोंऽशः परः सूर्योयोऽन्तर्ज्योतिरसम्प्लवम्। अभिधायक ॐकारस्तस्य तत्प्रेरकः परः ॥५५॥

स्थित मृत्पिण्ड धीरे-धीरे धूमता है, उसी तरह ज्योतिश्चक्र के मध्य में स्थित ध्रुव अत्यन्त मन्द गति से भ्रमण करते हैं ॥३९॥ जिस तरह कुलाल चक्र की नाभि अपने स्थान पर ही घूमती है, उसी तरह ध्रुव भी अपने स्थान पर ही घूमता है ॥४०॥ इस तरह दक्षिण एवं उत्तर की सीमाओं के बीच में मण्डलाकार घूमते हुए सूर्य की गति शीघ्र और मन्द हुआ करती है ॥४१॥ जिस अयन में उनकी गति दिन में मन्द होती है, उसमें रात्रि में उनकी गति तीव्र हो जाती है और जिस अयन में उनकी गति दिन में तीव्र होती है, उसमें रात्रि में उनकी गति मन्द हो जाती है ॥४२॥ हे द्विज ! सूर्य को सदा एक बराबर ही मार्ग पार करना पड़ता है । ये दिन और रात्रि मिलाकर तीस राशियों का भोग कर लेते हैं ॥४३॥ ये दिन में छह राशियों को और रात्रि में भी छह राशियों को भोगते हैं । राशियों के परिमाण के ही अनुसार दिन और रात्रि का घटना-बढ़ना हुआ करता है ॥४४-४५॥ उत्तरायण में सूर्य की गति दिन में मन्द और रात्रि में शीघ्र हुआ करती है । और दक्षिणायन में सूर्य की गति इसके ठीक विपरीत होती है ॥४६-४७॥ रात्रि उषा कहलाती है और दिन व्युष्टि कहलाता है । उषा और व्युष्टि के बीच के काल को सन्ध्या कहते हैं ॥४८॥ अत्यन्त भयङ्कर सन्ध्याकाल के होने पर मन्देहा नामक राक्षस सूर्य को खा जाना चाहते हैं ॥४९॥ हे मैत्रेय ! उन राक्षसों को प्रजापति ने शाप दिया है कि उनका शरीर अक्षय होने पर भी उनकी मृत्यु प्रतिदिन हो ॥५०॥ उसके बाद उन राक्षसों से सूर्य का अत्यन्त भयङ्कर युद्ध होता है । हे महामुने ! इसीलिए उत्तम ब्राह्मणगण ओङ्कार स्वरूप ब्रह्म तथा गायत्री से अभिमन्त्रित जल सूर्याभिमुख फेंकते हैं वह जल उन सबों के लिए वज्र बन जाता है और उससे वे राक्षस जल जाते हैं ॥५१-५२॥ अग्निहोत्र काल में 'सूर्यो ज्योतिः' मन्त्र से जो पहली आहुति दी जाती है, उससे सूर्य तेजः सम्पन्न हो जाते हैं ॥५३॥ त्रिधामा भगवान् विष्णु ओङ्कार स्वरूप हैं, ओङ्कार ही वाणियों का स्वामी है, उसका उच्चारण

तेन सम्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमत् । दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यान्यघानि वै ॥५६॥
तस्मान्नोल्लंघनं कार्यं सन्ध्योपासनकर्मणः । स हन्ति सूर्यं सन्ध्याया नोपास्तिं कुरुते तु यः ॥५७॥
ततः प्रयाति भगवान्ब्राह्मणैरभिरक्षितः । बालखिल्यादिभिश्चैव जगतःपालनोद्यतः ॥५८॥
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां च ।
त्रिंशत्कलश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥५९॥
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् । सन्ध्या मुहूर्तमात्रा वै ह्रासवृद्ध्योः समा स्मृता ॥६०॥
रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ। प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥६१॥
तस्मात्प्रातस्तनात्कालत्त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालात्तु सङ्गवात् ॥६२॥
तस्मान्माध्याह्निकात्कालादपराहण इति स्मृतः। त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः ॥६३॥
अपराहणे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च। दशपञ्चमुहूर्ता वै मुहूर्तास्त्रय एव च ॥६४॥
दशपञ्च मुहूर्तं वै अहर्वैषुवतं स्मृतम् ॥६५॥
वर्द्धते ह्रसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिर्ग्रसति वासरम् ॥६६॥
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभाव्यते। तुलामेषगते भानौ समरात्रिदिनं तु तत् ॥६७॥
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते। उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे ॥६८॥
त्रिंशन्मुहूर्तं कथितमहोरात्रं तु यन्मया। तानि पञ्चदश ब्रह्मन् पक्ष इत्याभिधीयते ॥६९॥
मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः। ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते ॥७०॥

करने से उन राक्षसों का विनाश हो जाता है ॥५४॥ सूर्य भगवान् विष्णु के अत्यन्त श्रेष्ठ अंश हैं, वे विकार रहित अन्तर्ज्योति स्वरूप हैं । ओङ्कार उनका वाचक है, वह उन राक्षसों के वध का प्रेरक है ॥५५॥ उस ओङ्कार के द्वारा प्रेरित प्रकाशमान् ज्योति उन पाप स्वरूप मन्देहा राक्षसों को भस्म कर देती है ॥५६॥ इसीलिए सन्ध्योपासन कर्मों का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए । जो व्यक्ति सन्ध्योपासन नहीं करता है वह सूर्य को मारने का काम करता है॥५७॥ उसके पश्चात् ब्राह्मणों के द्वारा तथा बालखिल्य आदि महर्षियों के द्वारा रक्षित भगवान् सूर्य जगत् का पालन करने के लिए जाते हैं ॥५८॥ पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओं की एक कला होती है । तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्त का एक रात-दिन होता है ॥५९॥ दिनों के ह्रास तथा वृद्धि आदि का कारण प्रात:काल मध्याह्न काल आदि दिवसांश हैं । दिनों के घटते-बढ़ते रहने पर भी संध्याकाल सदा एक मुहूर्त का ही होता है ॥६०॥ सूर्योदय से लेकर तीन मुहूर्त तक का काल प्रात:काल कहलाता है । यह सम्पूर्ण दिन का पाँचवाँ भाग होता है ॥६१॥ प्रात:काल के पश्चात् तीन मुहूर्त तक का काल सङ्गव काल कहलाता है । सङ्गव काल से लेकर तीन मुहूर्त तक का काल मध्याह्नकाल कहलाता है ॥६२॥ मध्याह्न काल के पश्चात् तीन मुहूर्त तक अपराह्न काल होता है ॥६३॥ अपराह्न के पश्चात् मन्ध्याह्न काल होता है । यह तीन मुहूर्त का होता है । इस तरह सम्पूर्ण दिवसांशों को मिलाकर पन्द्रह मुहूर्त होते हैं ॥६४॥ वैषुवत् दिन पन्द्रह मुहूर्त का ही होता है ॥६५॥ दक्षिण और उत्तर अयनों में दिन और रात घटते-बढ़ते रहते हैं । उत्तरायण में दिन रात्रि का ग्रास करता है और दक्षिणायन में रात्रि दिन का ग्रास करती है ॥६६॥ शरद् ऋतु और वसन्त के बीच में सूर्य के तुला अथवा मेष राशि पर जाने पर विषुवत् होता है । उस समय दिन और रात एक समान होते हैं ॥६७॥ सूर्य के कर्क राशि पर जाने पर दक्षिणायन होता है । सूर्य के मकरराशि पर जाने पर उत्तरायण प्रारम्भ होता है ॥६८॥ मैंने तीस मुहूर्तों का जो दिन और रात बतलाया है; उन

संवत्सरादयः पञ्च चमुर्मासविकल्पिताः। निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ॥७१॥
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः। इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः।
वत्सरः पञ्चमश्चात्र कालोऽयं युगसंज्ञितः ॥७२॥
यः श्वेतस्योत्तरः शैलः शृङ्गवानिति विश्रुतः। त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि यैरयं शृङ्गवान्स्मृतः ॥७३॥
दक्षिणं चोत्तरं चैव मध्यं वैषुवतं तथा। शरद्वसन्तयोर्मध्ये तद्भानुः प्रतिपद्यते।
मेषादौ च तुलादौ च मैत्रेय विषुवत्स्थितः ॥७४॥
तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः। दशपञ्चमुहूर्तं वै तदेतदुभयं स्मृतम् ॥७५॥
प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्वांस्तदा शशी। विशाखानं चतुर्थेऽशे मुने तिष्ठत्यसंशयम् ॥७६॥
विशाखानां यदा सूर्यश्चरत्यंशं तृतीयकम्। तदा चन्द्रं विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ॥७७॥
तदैव विषुवाख्योऽयं कालः पुण्योऽभिधीयते। तदा दानानि देयानि देवेभ्यः प्रयतात्मभिः ॥७८॥
ब्रह्मणेभ्यः पितृभ्यश्च मुखमेतत्तु दानजम्। दत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ॥७९॥
अहोरात्रर्द्धमासास्तु कालाः काष्ठाः क्षणास्तथा। पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावस्या तथैव च।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥८०॥

तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभोनभस्यौ च इषस्तथोर्जस्सहः सहस्याविति दक्षिणं तत् ॥८१॥

लोकालोकश्च यश्शैलः प्रागुक्तो भवतो मया। लोकपालास्तु चत्वारस्तत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ॥८२॥

पन्द्रह दिन और रात्रियों का एक पक्ष होता है ॥६९॥ दो पक्षों का एक मास होता है। दो सौर मासों की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयनों का एक वर्ष होता है ॥७०॥ सौर, सायन, चन्द्र तथा नक्षत्र इन चार प्रकार के मासों से अनेक प्रकार से कल्पित संवत्सर आदि पाँच प्रकार के वर्ष युग कहलाते हैं युग से ही सभी प्रकार के कालों का निर्णय होता है ॥७१॥ पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर इसी काल को युग कहते हैं ॥७२॥ जो श्वेत नामक पर्वत के उत्तर में पर्वत है, वह शृङ्गवान् कहलाता है, उसके तीन शृङ्ग हैं। उन सबों के ही कारण यह शृङ्गवान् कहलाता है ॥७३॥ उन तीनों शृङ्गों में एक दक्षिण में है दूसरा उत्तर में है। बीच में 'वैषुवत' शृङ्ग है। शरद् ऋतु और वसन्त ऋतु के मध्य में सूर्य वैषुवत् शृङ्ग पर आते हैं। मेष राशि के आदि में तुला राशि के आदि में तिमिरापहारी सूर्य विषुवत् शृङ्ग पर स्थित रहते हैं ॥७४॥ उस समय दिन और रात्रि दोनों बराबर होते हैं। उस समय दिन और रात दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त के होते हैं ॥७५॥ हे मुने ! जब सूर्य कृत्तिका के प्रथम भाग (मेश राशि के अन्त) में हों और चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में हों अथवा सूर्य विशाखा नक्षत्र के तृतीय अंश और चन्द्रमा कृत्तिका के चतुर्थ चरण में भोग कर रहे हों उसी समय विषुव नामक यह अत्यन्त पवित्र काल होता है। उसी समय संयत चित्त वाले पुरुषों को देवताओं, ब्राह्मणों, पितृगणों के लिए दान देना चाहिए। यह समय दान देने के लिए देवताओं के मुख के समान होता है। विषुव में दिया हुआ दान सफल हो जाता है ॥७६-७९॥ यागादि क्रिया के लिए दिन, रात, पक्ष, कला, काष्ठा, क्षण, पूर्णिमा, अमावस्या को जानना चाहिए। पूर्णिमा दो प्रकार की होती है राका तथा अनुमति, आमावस्या भी दो प्रकार की होती है, सिनीवाली तथा कुहू ॥८०॥ माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ ये छह मास उत्तरायण के होते हैं। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन) और पूष ये छह मास दक्षिणायन के

सुधामा शंखपाच्चैव कर्दमस्यात्मजो द्विज। हिरण्यरोमा चैवान्यश्चतुर्थः केतुमानपि ॥८३॥
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः। लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥८४॥
उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्। पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥८५॥
तत्रासते महात्मान ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः। भूतारम्भकृतं ब्रह्म शंसन्तो ऋत्विगुद्यताः।
प्रारभन्ते तु ये लोकास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥८६॥
चलितं ते पुनर्ब्रह्म स्थापयन्ति युगे युगे। सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥८७॥
जायमानास्तु पूर्वे च पश्चिमानां गृहेषु वै। पश्चिाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥८८॥
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्ति नियतव्रताः। सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ॥८९॥
नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम्। उत्तरः सवितुः पन्था देवयानश्च स स्मृतः ॥९०॥
तत्र ते वशिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः। सन्ततिं ते जुगुप्सन्ति तस्मान्मृत्युर्जितश्च तैः ॥९१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। उदक्पन्थानमर्यम्णः स्थितान्याभूतसम्प्लवम् ॥९२॥
तेऽसम्प्रयोगाल्लोभस्य मैथुनस्य च वर्जनात्। इच्छाद्वेषाप्रवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ॥९३॥
पुनश्च कामासंयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात्। इत्येभिः कारणैः शुद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ॥९४॥
आभूतसम्प्लवं स्थानममृतत्वं विभाव्यते। त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते ॥९५॥
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पापपुण्यकृतो विधिः। आभूतसम्प्लवान्तन्तु फलमुक्तं तयोर्द्विज ॥९६॥

होते हैं ॥८१॥ जिस लोकालोक पर्वत का वर्णन मैंने आपसे किया है, उस पर व्रतशील चार लोक पालों का निवास है ॥८२॥ सुधामा, कर्दम के पुत्र शंखपाद, हिरण्यरोमा और केतुमाल ये चार, निर्द्वन्द्व, अभिमान रहित, निरालस और निष्परिग्रह लोकपाल लोकालोक पर्वत की चारो दिशाओं में निवास करते हैं ॥८३-८४॥ अगस्त्य के उत्तर और अजवीथी के दक्षिण जो वैश्वानर मार्ग से भिन्न मार्ग है, वही पितृयान है ॥८५॥ उस मार्ग में अग्निहोत्र करने वाले ऋषिगण रहते हैं। भूतों की उत्पत्ति के आरम्भ, वेदाध्यायी, यज्ञानुष्ठान करने वाले तथा जो लोगों का सृष्टि करते हैं उन्हीं लोगों का वह मार्ग है ॥८६॥ वे लोग, प्रत्येक युग में सन्तान, तपस्या, मर्यादा तथा वेदश्रवण के द्वारा दूसरे युग में विच्छिन्न हुए वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करते हैं ॥८७॥ पहले के ही धर्म प्रवर्तक अपने पश्चात् कालिक धर्म प्रचारक सन्तानों के यहाँ जन्म लेते हैं, और उत्तर कालीन धार्मिक लोग मृत्यु के पश्चात् अपने पूर्वकालिक सन्तानों के यहाँ जन्म लेते हैं ॥८८॥ इस प्रकार से वे व्रत परायण महर्षिगण जब तक चन्द्रमा तथा तारे हैं तब तक सूर्य के दक्षिण मार्ग में आते जाते रहते हैं ॥८९॥ नागवीथी के उत्तर ओर और सप्तर्षियों से दक्षिण जो सूर्य का मार्ग हैं उसे ही देवयान कहते हैं ॥९०॥ उस मार्ग में इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले, निर्दोष, ब्रह्मचारी तथा सन्तान उत्पन्न करने में घृणा का अनुभव करने वाले सिद्ध पुरुष रहते हैं। अतएव वे मृत्यु को जीत लेते हैं ॥९१॥ सूर्य के इस उत्तर मार्ग में अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता महर्षिगण प्रलय काल पर्यन्त रहते हैं ॥९२॥ वे लोभ रहित होने, मैथुन का परित्याग करने, इच्छा तथा द्वेष का परित्याग करने शब्द इत्यादि (रूप, रस, स्पर्श और गन्ध) विषयों में विद्यमान दोषों को जाननें, सृष्टि प्रक्रिया का त्याग करने, काम का अंसयोग होने, इत्यादि इन सभी कारणों से शुद्ध हो जाते हैं, और अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं। प्रलयकाल पर्यन्त बने रहने के कारण इन्हें अमर कहा जाता है, त्रैलोक्य का यह स्थितिकाल मृत्यु रहित कहलाता है ॥९५॥ हे द्विज ! ब्रह्महत्या तथा अश्वमेध याग दोनों का फल पापियों और पुण्यवानों को प्रलय काल पर्यन्त बतलाया गया है ॥९६॥ है मैत्रेय ! जितने प्रदेश में ध्रुव की स्थिति है,

यावन्मात्रे प्रदेशे तु मैत्रेयावस्थितो ध्रुवः । क्षयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसम्प्लवात्॥९७॥
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः । एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भासुरम् ॥९८॥
निर्धूतदोषपङ्कानां यतीनां संयतात्मनाम् । स्थानं तत्परमं विप्र पुण्यपापपरिक्षये ॥९९॥
अपुण्यपुण्योपरमे क्षीणाशेषाप्तिहेतवः । यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१००॥
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाक्षिणः । तत्साष्टर्योत्पन्नयोगेद्धास्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०१॥
यत्रोतमेतत्प्रोतं च यद्भूतं सचराचरम् । भाव्यं च विश्वं मैत्रेय तद्विष्णोः परमं पदम्॥१०२॥
दिवीव चक्षुराततं योगिनां तन्मयात्मनाम् । विवेकज्ञानदृष्टं च तद्विष्णोः परमं पदम्॥१०३॥
यस्मिन्प्रतिष्ठितो भास्वान्मेढीभूतः स्वयं ध्रुवः । ध्रुवे च सर्वज्योतींषि ज्योतिः ष्वम्भोमुचो द्विज ॥१०४॥
मेघेषु सङ्गता वृष्टिर्वृष्टेः सृष्टेश्च पोषणाम् । आप्यायनं च सर्वेषां देवादीनां महामुने ॥१०५॥
ततश्चाज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्भुजः । वृष्टेः कारणतां यान्ति भूतानां स्थितये पुनः ॥१०६॥
एवमेतत्पदं विष्णोस्तृतीयममलात्मकम् । आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृष्टिकारणम् ॥१०७॥
ततः प्रभवति ब्रह्मन्सर्वपापहरा सरित् । गङ्गा देवाङ्गनाङ्गानामनुलेपनपिञ्जरा ॥१०८॥
वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम् । विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः ॥१०९॥
ततः सप्तर्षयो यस्याः प्रणायामपरायणाः । तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटा जले॥११०॥
वार्योघैः सन्ततैर्यस्याः प्लावितं शशिमण्डलम् । भूयोऽधिकतरां कान्तिं वहत्येतदुह क्षये॥१११॥

पृथिवी से उतने पर्यन्त के प्रदेश प्रलयकाल में विनष्ट हो जाते हैं ॥९७॥ सप्तर्षियों से ऊपर तथा उत्तर की ओर जो अत्यन्त तेजोमय ध्रुव का स्थान है, वही भगवान् विष्णु का तीसरा दिव्य स्थान है ॥९८॥ हे विप्र ! जिनके पुण्यपाप रूपी कर्म विनष्ट हो गये हैं, जो समस्त दोषरूपी पङ्क से रहित हो गये हैं, अपने मन को वश में रखने वाले यतियों का वही परम स्थान है ॥९९॥ पुण्य तथा पाप रूप कर्मों के समाप्त हो जाने तथा संसार बन्ध की प्राप्ति के समस्त कारणों के विनष्ट हो जाने पर जीव जिस पद को प्राप्त करता है, वही भगवान् विष्णु का परमपद है ॥१००॥ जहाँ पर समस्त कर्मों के विनष्ट हो जाने से परमात्मा के अत्यन्त साम्य रूप ऐश्वर्य को प्राप्त किए हुए धर्म तथा ध्रुवा आदि लोकसाक्षिगण रहते हैं, वही भगवान् विष्णु का परम पद है ॥१०१॥ हे मैत्रेय ! जिसमें यह सम्पूर्ण भूतकालिक, भविष्यत् कालिक, चाराचरात्मक विश्व ओत-प्रोत है वही भगवान् विष्णु का परमपद है ॥१०२॥ जिसे योगिजन अपने विवेकमय ज्ञान दृष्टि के द्वारा आकाश मण्डल में देदीप्यमान सूर्य के समान देखते हैं, वही भगवान् विष्णु का परमपद॥१०३॥ हे द्विज ! जिसमें सूर्य, जगत् के आधारभूत ध्रुव, ध्रुव में स्थित समस्त तारागण, ताराओं में स्थित मेघ तथा मेघों में विद्यमान वृष्टि स्थित है । उस वृष्टि से ही सम्पूर्ण सृष्टि पोषित होती है । तथा समस्त देवता आदि को पोषित करने वाले यज्ञ ये सबके सब भगवान् विष्णु के परमपद में ही स्थित हैं ॥१०४-१०५॥ यज्ञों में दी गयी घृत की आहुति द्वारा पुष्ट हुए देवगण ही जीवों के पालन के लिए वृष्टि के कारण बनते हैं ॥१०६॥ इस तरह यह निर्मल भगवान् विष्णु का तृतीय लोक (ध्रुवलोक) तीनों लोकों का कारण तथा वृष्टि का कारण है ॥१०७॥ हे ब्रह्मन्! वहीं से देवाङ्गनाओं के अङ्गों के अनुलेपन से सुगन्धित बनी हुयी, समस्त पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गा नदी उत्पन्न होती है ॥१०८॥ हे ब्रह्मन् ! भगवान् विष्णु के बायें चरण के अङ्गुष्ठ से निकली हुयी गङ्गा के जल को ध्रुव दिन-रात अपने शिर पर चढ़ाते रहते हैं ॥१०९॥ उसके बाद जिस गङ्गा की धारा में खड़े होकर प्राणायाम करने वाले सप्तर्षिगण अपनी जटा को जल में धोते हैं ॥११०॥ जिस गङ्गा के जल से चन्द्रमण्डल के धुल जाने के कारण

मेरुपृष्ठे पतत्युच्चैर्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात्। जगतः पावनार्थाय प्रयाति च चतुर्दिशम् ॥११२॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च संस्थिता। एकैव या चतुर्भेदा दिग्भेदगतिलक्षणा ॥११३॥
भेदं चालकनन्दाख्यं यस्याः शर्वोऽपि दक्षिणम्। दधार शिरसा प्रीत्या वर्षाणामधिकं शतम् ॥११४॥
शम्भोर्जटाकलापाच्च विनिष्क्रान्तास्थिशर्कराः। प्लावयित्वा दिवं निन्ये या पापान्सगरात्मजान् ॥११५॥
स्नातस्य सलिलं यस्याः सद्यः पापं प्रणश्यति। अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मैत्रेय जायते ॥११६॥
दत्ताः पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः। समाशतं प्रयछन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम् ॥११७॥
यस्यामिष्ट्वा महायज्ञैर्यज्ञेशं पुरुषोत्तमम्। द्विज भूपाः परां सिद्धिमवापुर्दिवि चेह च ॥११८॥
स्नानाद्विधूतपापाश्च यज्जलैर्यतयस्तथा। केशवासक्तमनसः प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम् ॥११९॥
श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता। या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने ॥१२०॥
गङ्गा गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि। स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ॥१२१॥
यतः सा पावनायालं त्रयाणां जगतामपि। समुद्भूता परं तत्तु तृतीयं भगवत्पदम् ॥१२२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

क्षय होने के बाद पुनःपहले की अपेक्षा अधिक कान्तिसम्पन्न सा हो जाता है ॥१११॥ चन्द्रमण्डल से गङ्गा की धारा संसार को पवित्र बनाने के लिए समेरु पर्वत पर गिरती हैं और वहाँ से वह चारो दिशाओं में जाती है ॥११२॥ एक ही गङ्गा की चारो दिशाओं में जाने वाली सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा ये चार धाराएँ हो जाती है ॥११३॥ जिस गङ्गा की अलकनन्दा नाम की दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली धारा को भगवान् शिव ने सौ से भी अधिक वर्षों तक धारण किया ॥११४॥ शङ्करजी की जटा समूह से निकलकर उन्होंने सगर के पापी पुत्रों के अस्थि चूर्णों को प्लावित करके उन्हें स्वर्ग पहुँचा दिया ॥११५॥ हे मैत्रेय ! जिस गङ्गा में स्नान करने से शीघ्र ही पापों का नाश हो जाता है, और अपूर्व पुण्य की प्राप्ति हो जाती है ॥११६॥ हे मैत्रेय ! जिस गङ्गा में पुत्रों द्वारा श्रद्धा पूर्वक पितरों को जलदान (तर्पण) किए जाने पर उन्हें सौ वर्षों तक दुर्लभ तृप्ति होती है ॥११७॥ हे द्विज ! जिस गङ्गा के तट में यज्ञपुरुष भगवान् की यज्ञों के द्वारा आराधना करके राजगण इस लोक में तथा परलोक में परम सिद्धि को प्राप्त कर लिए।॥११८॥ जिनका मन भगवान् केशव में लगा है, ऐसे सतियों के जिन गङ्गाजी के जल में स्नान करने से सारे पाप विनष्ट हो गये और वे निर्वाण पद को प्राप्त कर लीं ॥११९॥ प्रतिदिन श्रवण करने, अभिलाषा करने, दर्शन करने, स्पर्श करने, पीने, स्नान करने तथा कीर्तन करने से जो गङ्गाजी जीवों को पवित्र बना देती हैं ॥१२०॥ सैकड़ों योजन दूर से भी जिनके गङ्गा इस नाम का स्मरण से भी जो गङ्गा जीवों के तीन जन्मों के पापों को विनष्ट कर देती हैं ॥१२१॥ त्रैलोक्य को पवित्र बनाने के लिए जिससे गङ्गाजी उद्भूत हुयी वही श्रीभगवान् का तृतीयपद है ॥१२२॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के दूसरे अंश के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥